राष्ट्रीय संसाधन केंद्र

हिंदी विषय में उच्च शिक्षा संकाय के लिए

शिक्षण में वार्षिक पुनश्चर्या पाठ्यक्रम (अर्पित) 2019

[Annual Refresher Programme in Teaching (ARPIT) 2019]

रीतिकालीन हिंदी साहित्य

पाठ शीर्षक :	**प्रेम के पीर का कवि घनानंद**
पाठ लेखक :	**प्रो. रामदेव शुक्ल,** सेवानिवृत्त आचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर। संपर्क–9956585193 ईमेलः shuklaramdev@gmail.com
पाठ समीक्षकः	1. प्रो. कृष्ण कुमार सिंह, हिंदी एवं तुलनात्मक विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 2. प्रो. अवधेश कुमार, हिंदी एवं तुलनात्मक विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
समन्वयक	प्रो. अवधेश कुमार, हिंदी एवं तुलनात्मक विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
सहसमन्वयक	डॉ. रामानुज अस्थाना, हिंदी एवं तुलनात्मक विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

पाठ का उद्देश्य

1. घनानंद के काव्य का समग्रता से मूल्यांकन करना।
2. घनानंद के काव्य सौंदर्य की विवेचना करना।
3. घनानंद के प्रेमतत्व को समझाना।
4. घनानंद के रचनात्मक महत्व को प्रतिपादित करना।
5. सामयिक परिवेश में घनानंद की कविता को रेखांकित करना।

प्रस्तावना

''लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत''

यह घोषणा करने वाले कवि आनन्दघन की कविता पाठक से कुछ अतिरिक्त संवेदनशीलता, समझ और अध्ययन की अपेक्षा करती है तो यह सर्वथा उचित है। आनन्दघन की कविता दूसरों से किस स्तर पर भिन्न है इसका अनुमान आचार्य शुक्ल के कुछ वाक्यों के आलोक में किया जा सकता है। ''ये साक्षात् रसमूर्ति और ब्रजभाषा काव्य के प्रधान स्तम्भों में हैं।'' ''इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। विप्रलम्भ श्रृंगार ही अधिकतर इन्होंने लिया है। ये वियोग श्रृंगार के प्रधान मुक्तककार कवि हैं। 'प्रेम की पीर' ही लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।'' प्रेम की गूढ़ अन्तर्दशा का उद्घाटन जैसा इनमें है वैसा हिन्दी के अन्य श्रृंगारी कवि में नहीं।'' –''भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके ''हृदय के साथ

जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भाव–भंगी के साथ–साथ जिस रूप में चाहते थे, उस रूप में मोड़ सकते थे। इनके ह्रदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी।'' ''यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों की लिया है, पर वियोग की अन्तर्दशाओं की ओर ही उनकी दृष्टि अधिक है। वियोग वर्णन भी अधिकतर अन्तर्वृत्ति निरूपक है, बाह्यार्थ निरूपक नहीं। घनानन्द ने न तो बिहारी की तरह विरह–ताप को बाहरी माप से मापा है न बाहरी उछलकूद ही दिखाई है। जो कुछ हलचल हैं वह भीतर की है। बाहर से वह वियोग प्रशान्त और गम्भीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह तपना है, न उछकूद कर भागना है। उनकी मौनमधि पुकार है।'' ''उक्ति का अर्थगर्भत्व भी घनानन्द का स्वतन्त्र और स्वावलम्बी होता है, बिहारी के दोहों के समान साहित्य की रूढियों (जैसे नायिकाभेद) पर आश्रित नहीं रहता। उक्तियों की सांगोपांग योजना या अन्विति इनकी निराली होती हैं।''

आनन्दघन की भाषा, उक्ति का अर्थगर्भत्व और संयोग–वियोग श्रृंगार की निजी विशेषताओं की ओर आचार्य शुक्ल के स्पष्ट संकेतों के बावजूद हिन्दी के समीक्षकों ने मनमाने निष्कर्ष निकाले हैं। ''उनके भावों में विवाद और निराशा का प्राचुर्य है।''[3] और ''उनके भाग्य में प्रेम का हर्ष बदा ही नहीं है।''[4] ऐसे निष्कर्षो से आनन्दघन के प्रेम, सौन्दर्य और संयोग श्रृंगार की विशेषताएँ छूट जाती हैं। अतः यहाँ उनके काव्य में इन पक्षों पर विचार कर लेना उचित होगा।

आनन्दघन का संयोग श्रृंगार

एक ओर जहाँ आनन्दघन के श्रृंगारचित्रण में अत्यन्त सूक्ष्म (यहाँ तक कि अधिकांश रीतिकालीन कवियों से अपरिचित) मानसिक दशाओं का उद्घाटन हुआ है, वहीं दूसरी और उसमें सधन ऐन्द्रियता और मांसल सौन्दर्य भी मुखर होता है। नारी–सौन्दर्य की प्रति पुरुष की सम्मोहित दृष्टि, आलम्बन की चेष्टाओं से उस आसक्ति की तीव्रता में वृद्धि, संयोग के प्रगाढ़ चित्र और इस प्रकार की चरम तृप्ति का आस्वादन, आनन्दघन के श्रृंगार को वायवी या केवल मानसिक होने से बचाकर स्वाभाविक बना देते हैं।

यहाँ कुछ लोगों को यह लग सकता है कि आनन्दघन के प्रेम की महत्ता शरीर के धरातल पर आ जाने से कुछ कम या हीन हो गई है। इन लोगों को स्मरण करना चाहिए कि शारीरिक स्तर पर प्रेम का अनुभव करने वाला ही उसके सूक्ष्म, मानसिक या आध्यात्मिक पक्ष की ओर स्वाभाविक रूप में बढ़ सकता है। इसीलिए सूफियों के यहाँ इश्क हकीकी तक पहुँचने के लिए उससे पहले इश्क मजाजी (लौकिक या शारीरिक) की अनिवार्यता बताई गई है। तुलसी को आसक्ति की तीव्रता उपमान के लिए ''कामिहि नारि पियारि जिमि' कहना पड़ा। इस तीव्रता का अनुभव आनन्दघन के काव्य में अत्यन्त स्वाभाविक रूप में होता है। रीतिकाल के अन्य कवियों (बिहारी, देव आदि) में भी शारीरिक स्तर पर आकर्षण की तीव्रता दिखाई पड़ती है किन्तु आनन्दघन के सौन्दर्य–चित्रों और उनके प्रति कवि प्रेमी की आसक्ति में जो ताजगी है, वह स्वानुभूत ही हो सकती है। बिहारी की नायिकाओं में भावक के मन में गुप्त रति को जागृत करने की (आलम्बनत्व की) क्षमता है, किन्तु आनंदघन के स्वानुभव की तीव्रता

भावक को (उस प्रेमी के सामने) छोटा कर देती है। आनन्दघन की प्रिया सार्वजनिक श्रृंगार का आलम्बन बनाकर प्रस्तुत नहीं की गई है, उसमें प्रस्तुत करने वाले की प्रगाढ़ वैयक्तिकता स्पष्ट रूप में झलकती है, जिसे विद्वानों ने अतिवैयक्तिकता[5] नाम दिया है। अतिवैयक्तिकता की भावुकतापूर्ण कल्पना न भी करें, वैयक्तिकता पर्याप्त है, जिसका अन्य रीतिकालीन कवियों में सर्वथा अभाव है। घनानंद की प्रिया के पूर्ण विकसित रूप को कह पाना सम्भव नहीं है। उसके सामने मन, वाणी, बुद्धि आँखें सब अपनी शक्ति खो बैठते है। दृष्टि उस रूप तक पूरी तरह पहुँच ही नहीं पाती, फिर उसके वर्णन करने का सवाल ही कहाँ उठता है–

''रूप की उझलि आछे आनन पै नई–नई
तैसी तरुनई तेह–ओपी अरुनई है।
उलटि अनंग रंग की तरंग अंग अंग
भूषन–बसन भरि आभा फैलि गई है।
महारस–भीर परै लोचन अधीर तरैं
आछी ओक धरै प्यास–पीर सरसई है।
कैसे घनआनंद सुजान प्यारी छबि कहौं
दीठि तौ चकित औ' थकित मति भई है।''

भीतर से उफनती हुई रूप की राशि (उझलि) के नित्य नये रूपों में प्रकट होने में इतनी गति है कि यह कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि–

'भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।'' – बिहारी

आँखे वहाँ तक पहुँचने से पहले ही महारस में डूब जाती हैं, बुद्धि थक जाती है, अतः उस रूप का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

फिर भी सुजान के रूप –सौन्दर्य के जो चित्र मिलते हैं वे उसके महत्व का आभास दिलाने की क्षमता रखते हैं।

आनन्दघन द्वारा वर्णित प्रिया के रूप के सम्बन्ध में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि वहाँ अंगों के कोरे वर्णन मात्र नहीं हैं। नखशिख का निर्वाह तो उन्होंने नहीं ही किया है, प्रिया के जिन विशिष्ट अंगों का वर्णन किया है उनमें भी गति और मुद्राओं पर विशेष ध्यान है। इससे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि आश्रय के मन पर होने वाली प्रतिक्रिया का संकेत प्रत्येक रूप–चित्र में है।

'नैननि बोरति रूप के भौंर अचंभे भरी छतिया–उथराई।''

इस एक पंक्ति में आलम्बन के रूप और यौवन की तीव्रता और उसके प्रति आश्रय के मन की प्रतिक्रिया का पूर्ण चित्र है। उथली (थोड़ी उठी हुई) छातियों (उरोजों) का उथलापन रूप के

आवर्त में नेत्रों को डूबो देता है। इस चित्र की तुलना छायावादी कवि पन्त के एक चित्र से की जा सकती है–

''इन गढ़ों में रूप के आवर्त से, घूम फिर कर,
नव से किसके नयन,
हैं नहीं डूबे, अटक कर, भटक कर,
भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के।''
– (ग्रंथि)

प्रिया के कपोलों पर पड़ने वाले गढ़ों के आवर्त (भँवर) में देखने वालों के नेत्र रुपी नाव का तरुण सौन्दर्य के भार से दबकर डूब जाना– एक पूर्ण चित्र है।

आनन्दघन के उपर्युक्त चित्र में एक और विशेषता है। यहाँ देखने वाले के नेत्रों को जो भँवर अपने में डूबाती है, वह गहराई से नहीं, उथलेपन से (उरोजों के सन्दर्भ में ओछेपन में ही सारा सौन्दर्य है) उत्पन्न होती है.। विरोध का यह चमत्कार काव्यत्व को बढ़ाता है।

इसी छन्द में प्रिया के कटाक्षों का वर्णन है जो काम के बाणों को भोथरा कर देने वाला हैं।

''पैने कटाछनि–ओज मनोज के बानन बीच विधी भुथराई।''

एक दूसरे चित्र में प्रिया के ऊँचे उरोजों का उत्साह कामदेव के ओज का दलन करता है।

''घनआनंद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज की ओज–दली।''

प्रिया की दो आँखों के लावण्य में प्रेमी की बुद्धि ऐसे खो जाती है–

''द्वै सरोज बीच एक बसत रसत कैसें
लसत जु ऐसे अचरज अधिकाई है।''

दो समान सौन्दर्य वाले खिले कमल पुष्पों के बीच एक भ्रमर (मन–मति, बुद्धि) का घूमना, प्रेमी की दृष्टि का प्रिया के नेत्रों के सौन्दर्य पर लुब्ध होने का तद्रूप चित्रण करता है।

सुजान की पीठ, उदर कटि,साड़ी की चुन्नटें, सब पर प्रेमी की लालसा लिप्त दृष्टि है। पीठ के वर्णन में किसी विशिष्टता के बिना कवियों ने परम्परा का पालन मात्र किया है। आनन्दघन का मन पीठ देखकर (प्रिया की) विमन हो जाता है।

''मन दै मनाऊँ सो न पाऊँ घनआनंद पै
मोहिं यों विमन करै एरी तेरी पीठि है।''

एक दूसरे छन्द में सुजान की पीठ देखकर प्रेमी की दृष्टि और सब जगह से मुँह फेर लेती है–

''जान की पीठी लखे घनआनंद आनन आन तें होत उचाटी।''

उसके उदर के सौन्दर्य को देखकर सौन्दर्य के अन्य उपकरणों के गर्व ओले की तरह गलने लगते हैं।

''ताकें तो उदर घनआनंद सुजान प्यारी
ओछी उपमान को गरूर ओरे लौ गरे।''

सौन्दर्य के गर्व और यौवन के गरूर से अंग–अंग में ऐंठ तो हैं ही, नाकचढ़ाकर प्रिया का डोलना प्राणों में (आश्रय के) सीधे प्रवेश कर जाता है।

''पैठत प्रान खरी अनखीली सु नाक चढ़ाएई डोलत टेंठी।''

प्रिया की कलाई चूड़ियों से भरी हुई हैं। उन चूडीयुक्त हाथों में ही प्रेमी कां मन पड़ जाता हैं।

''चारु चुरीन चितै घनआनन्द चित्त सुजान के पानि भयौ हैं।''

उसकी भौंहें नृत्य के भावों के भेद एक गति में बता देती हैं –

''नाचहिं भाव के भेद बतावत है घनआनंद भौंह–चलायन।''

उसके गले की एक गति प्रेमी के प्राणों को रस से भिजा देती है–

''सरस सुजान घनआनन्द भिजावै प्रान।
गरबीली ग्रीवा जब आनि मान पै ढुरे।''

उसके स्वर के बाण बिना कमान के छूटने पर भी प्रेमी को इस तरह बिद्व कर देते हैं कि उसका शरीर लोटने लगता है –

''साँच के सान धरे सुर–बान, पै छूटे बिना ही कमान सों जोटैं।
x x x
प्रान सुजान के गान बिंधे घट लोटें परे, लगि तान किचोटै।''

प्रिया के पाँवों के सौन्दर्य पर प्रेमी की दृष्टि का टिका रह जाना, दृष्टि के साथ मन का वहीं अटक जाना इस तरह वर्णित है कि एक ही छन्द से आनन्दघन के रूप –वर्णन की ऐन्द्रियता (सेन्सुअसनेस) प्रकट हो जाती है–

''रति–सांचे ढरी अछवाई भरी पिडुरीन गुराइयै पेखि पगै।
छबि घूमि घुरै न मुरै मुरवान सौं लोभी खरो रस झूमि खगै।
घनआनन्द एंडिनि आनि भिड़ें तरवानि तरे तें भरै न डगै।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पा्य्नि लागि–न हाथ लगै।''

प्रेमी का कथन है कि मेरा मन तुम्हारी पिंडलियों की गुराई और रति के सांचे में ढली हुई उनकी सुघड़ता देखकर उसी में लिप्त हो गया। वहाँ से नीचे उतरा तो वह लोभी एड़ी के घेरे से मुड़ने को तैयार न हुआ। फिर एड़ियों पर आया और वहाँ से तलवों के नीचे सरक कर स्थिर हो गया। मेरा मन तुम्हारे पैरों से लग कर मेरे हाथ ही नहीं लगता। मुहावरे की अदा के साथ पिंडलियों के उभार पर टिकने वाले मन की लालसा दर्शनीय है। पिंडलियों का वर्णन पश्चिमी साहित्य में तो बहुत अधिक है, भारतीय साहित्य में वह नहीं के बराबर है। नखशिख वाले कवियों ने भी उस पर बहुत ध्यान नहीं दिया है।

प्रिया की उत्साहपूर्वक चुनकर पहनी गई साड़ी (अत्यन्त गोरे शरीर पर सांवली–काली सा नीली) की फबन पर प्रेमी की लालसालिप्त दृष्टि साकार हो उठती है।

''कैसी फबी घनआनन्द चोपनि सों पहिरी चुनि सांवरी सारी।''

चोली वर्णन में तो चोली की कढ़ाई की रेखाओं का प्रिय के उरोजों में अंकित हो जाना कवि के अनुभवों की गहराई का प्रमाण है –

''देखि जियौ न छियौ घनआनन्द कोंवरे अंग सुजानवधू के।
चेली चुनावट चीन्हे चुभैं चपि होत उजागर दाग उतू के।''

इस प्रकार के बहुत सारे सौन्दर्य–चित्र है जिनमें प्रेमी की लालसा की उपस्थिति देखी जा सकती है। इसी उपस्थिति या आत्मीयता के कारण आनन्दघन के चित्र न तो नकली लगते हैं, न बाजारू और न दूसरे नायक–नायिकाओं के लिए रचित।

सम्पूर्ण शरीर की शोभा की व्यंजना ऐसे ही अनेक छन्दों में अद्भुत प्रभादोत्पादकता के साथ हुई है। प्रिया की लाज में लिपटी अनेक भेदों और भावों से भरी हुई चितवन उसके विलक्षण नेत्रों के बांकपन में प्रकट होती है। उसकी बातों से रस निचुड़ता है। उसके मुड़ जाने में, उसकी गति में अनंग के अनेक रंग एक साथ ही प्रकट हो जाते हैं।

''लाजनि लपेटी चितवनि भेद–भाय–भरी
लसति ललित लोल–चख–तिरछानि मैं।''
छबि को सदन गोरों बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन–दमकि फैलि हियें मोती–माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम–पगी बतरानि मैं।

आनन्द की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग रंग ढुरि मुरि जाति मैं।''

उसकी एक–एक गति में काम को उद्दीप्त करने वाली छटाएँ प्रकट हो रही हैं। इस छन्द में –दसन–दमकि फैलि हियें मोती–माल होति' की मूर्त छबि अन्यत्र दुर्लभ है। प्रिया प्रिय के साथ लाड़युक्त होकर बात करती है तो उसके मोती के समान दांतों की छबि ह्रदय में मोती की माला हो जाती है। हँसी की उज्जवलता का वक्षस्थल पर मोती की माला के रूप में फैल जाना उज्जवल हास का मूर्तीकरण हैं। इसका एक अन्य संकेत है जो और भी काव्यात्मक है। प्रिया के हास की उज्ज्वलता प्रेमी (आश्रय) के ह्रदय में (और पर) मुक्ता–माला की तरह सज जाती है।

इसी तरह का जीवन्त चित्र प्रिया के बोलने में छबि के फूलों की वर्षा होने का है–

''हँसि बोलन मैं छबि फूलन की बरखा उर–ऊपर जाति है ह्वै।''

प्रिया हँसकर बोलती है। हँसी की उज्ज्वलता मानो साकार होकर उज्ज्वल फूलों की तरह उसके वक्षस्थल पर बरस जाती है। (हँसने में फूल झड़ना' इस मुहावरे का अत्यन्त परिष्कृत और कलात्मक रूप है) दूसरा संकेत आलम्बन (प्रिया) की उज्ज्वल हँसी से प्रिय (आश्रय) के ह्रदय पर फूलों की वर्षा हो जाने का है। प्रिया हँसकर बोलती है, प्रिय को ऐसा लगता है कि उसके ह्रदय में फूलों की वर्षा हो रही है। इसी छन्द में अन्तिम पंक्ति है–

''अंग–अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनो रूप अबै धर च्वौ।''

प्रिया के अंग–अंग से धुति की तरंगें उठ रही हैं। द्युति की ये तरंगे (विद्युत तरंगों की भाँति) प्रेमी के मन–प्राणों को खींच लेती हैं। प्रिया के अंगों में रूप इस तरह भरा है कि लगता है, अभी धरती पर टपक पड़ेगा। लबालब भरे पात्र से जैसे रस की बूँदे अब गिरीं कि तब गिरीं।

प्रेमी दृष्टि प्रेमिका के शरीर को वैसे ही प्रसन्न और पुलकित कर देती है जैसे कोई आदमी प्यार से किसी लता को हिलाकर छोड़ दे। यहाँ आनन्दघन लता को झकोरे से लहराकर महक से भरी हुई देखते हैं।

''लाड़–लसी लहकै महकै अंग रूप–लता लगि दीठि–झकोरै।''

दृष्टि (आश्रय की) के झकोरे से प्रिया की पूरी देह–लता हिल जाती है। हिलने से वे कलियाँ (सौन्दर्य और सुगन्धि की) जो बन्द थीं, खिल जाती हैं, उनकी सुगन्ध बिखरने लगती है। शरीर के आकर्षण का, प्रणय–दृष्टि पाकर बढ़ जाने का, अत्यन्त भावपूर्ण और कलात्मक अंकन है।

सौन्दर्य के इन चित्रों से आनन्दघन की प्रेमिका का पूरा वर्णन हो गया हो ऐसा मानने का कोई कारण नहीं हैं। वे तो यह मानते हैं कि प्रिया के अनुपम रूप के नगर तक पहुँचने में प्रेमी के नेत्रों को एक से एक बड़ी बाधाएँ पार करनी पड़ती हैं–

''कोऊ न देखै न काहु दिखावत, आपनी आन न जान अमैडे।
बैठि सभा–मधि न्यारे रहें पुनि रोकत चेटक लौं दृग–पैंडे।
कौन पत्याय कहैं घनआनन्द हैं सब सूधे–सयान सो ऐंडे।
रूप अनूपम को पुर दूरि, सु बावरे नैनन, के मग बैंडे।''

एक तो रूप का वह नगर दूर, दूसरे प्रेमी के नेत्रों की हालत यह है कि वे बावरे हैं, रास्ता टेढ़ा–मेढ़ा हैं, मार्ग में अवरोध हैं और कोई सहायता करने वाला नहीं। संसार के दूसरे लोग क्या सहायता करेंगे, उनके पास न वह समझ है, न दृष्टि। अतः प्रिया के रूप का वर्णन सम्भव नहीं है।

रूप की अवर्ण्यता के लिए कवि ने एक ऐसा जीवन्त और पूर्ण चित्र खींचा है कि उसकी समानता नहीं हो सकती–

''पानिप अपार घनआन्द उकत औछी
जतन–जुगति जोन्ह कौन पै नपति हैं।''

उस रूप का वर्णन कर पाना वैसा ही है जैसा ज्योत्स्ना को तौलना। कवि के पास उक्ति है। (तुलसी वाला 'अरथ आखर बल') जो ओछी है, और दूसरी और चाँदनी की तरह खिला हुआ वह अपार रूप–पानिप (रूप का पानी–जैसे मोती का)। भला किसी भी उपाय से किसी भी आदमी में ज्योत्सना को मापने की शक्ति है? रूप के सम्बन्ध में एक बातें हैं किन्तु उसकी अवर्ण्यता के लिए इससे अच्छी उक्ति का होना कठिन है।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि आनन्दघन की प्रिया का यह असाधरण रूप–सौन्दर्य ही है जिसका अभाव उनके विरह को इतना तीव्र और आवेगमय बना देता है। रूप –सौन्दर्य का उपर्युक्त चित्रण रीति–परम्परा से मुक्त रहने वाले या यों कहें कि उस परम्परा के प्रति अज्ञान रखने वाले कवि के लिए सम्भव नहीं होता। इस सम्बन्ध में डॉ. भगीरथ मिश्र का यह कथन महत्वपूर्ण है कि, ''घनानन्द ने रूप और भाव का चित्रण बिल्कुल रीतिकाव्य की पद्वति पर किया है, जो बड़ा ही मार्मिक है और ऐसे चित्रण को हम केवल अलौकिक सौन्दर्य का भक्त–सुलभ चित्रण कहकर टाल नही सकते।''[6]

संयोग श्रृंगार के प्रगाढ़ चित्र

आनन्दघन का काव्य प्रबन्ध नहीं है और न इन्हें किसी प्रकार की काव्यरूढ़ि का अन्धानुकरण पसन्द है, इसलिए घटना के रूप में संयोग अथवा मिलन के वर्णन का सवाल

नहीं उठता, किन्तु प्रिया के उत्तेजक सौन्दर्य, उसकी मुद्राएँ, अंगभंगी, और इनके प्रति प्रेमी की आतुर पिपासा की अभिव्यक्ति आनन्दघन अनेक छन्दों में विलक्षण रूप में करते हैं।

प्रिया की सलज्जता प्रेमी के ह्रदय पर क्या गज़ब ढाती है–

''घूँघट काढ़ि जो लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिन काजनि।
x x x
देखते देखते दीसि परै नहिं यों बरसै घनआनंद लाजनि।''

यह घूँघट लज्जा के अभिनय के रूप में प्रखर उद्दीपन का काम करता है। यह बिन काजनि (बिना जरूरत) लाज हैं, अर्थात् लाज का अभिनय है।

प्रिया रूप की लता है जो प्रेमी की दृष्टि के झकोरे से हिल–हिलकर लहकने और महकने लगती है। प्रेमी के ह्रदय का मंथन उसमें उत्पन्न रीझि कर रही है और उस पर प्रिया की फैली हुई बाँहों की आलिंगन–मुद्रा प्रेमी को मूढ़ बना देती है–

''लाड़लसी लहकै महकै अंग रूप –लता लगि दीठि झकोरै।''
x x x
''रीझि बिलोएई डारति है हिय, मोहति टोहति प्यारी अकोरै।''

प्रिया की वाणी का तीखा आसव और उसके अंगो की मुद्राएँ प्रेमी के रोम–रोम में काम को जगाते रहते हैं –

''कंठ–कांच–घटी तें बचन चोखो आव लै,
अधर पियालैं पूरि राखति सहेत है।
रूप मतवारी घनआनंद सुजान प्यारी,
कानन ह्वै प्राननि पिवाय पीवै चेत है।
छेकेई रहत रैन द्यौस प्रेम प्यास आस,
कीनी नेम–धरम कहानी उपनेत है।
ऐसे रस–बस क्यौं न सोवै और स्वाद कहौ
रोम–रोम जाग्यौई रहत मीनकेत हैं।''

और जब रोम–रोम में काम जगा हो तो दूसरे स्वाद अपने आप सो जायेंगे। फिर वह प्रिया जहाँ कानों के मार्ग से स्वर–संगीत का आसव पिलाती है उसके साथ ही प्रेमी के चेत (चेतना) को पी जाती है। उसकी चेतना विलुप्त हो जाती है। पीना साँप आदमी की साँस को पीता है और साथ ही उसे अपने जहर पिलाता जाता है।

इस तरह अवश हुआ प्रेमी का मन चाहता है कि –

''घनआनंद यौं बहुभांतिन हौं सुखदान सुजान समीप बसौं।
हित–चायनि च्वै चित चाहत है नित पायन ऊपर सीस घसौं''

कामना की तीव्रता का यह हाल है, उधर प्रिया अनमनी है। उसका अनमनापन प्रेमी को और रिझाता है–

''तेरी अनमाननि ही मेरे मन मानि रही,
लोचन निहारै हेरि सोंहें न निहारिबो।
कोरि कोरि आदर को करत निरादर है,
सुधा तें मधुर महा झुकि झिझकारिबो।
जीवन की ज्यारी घनआनंद सुजान प्यारी,
जीव–जीति लाहौ लहे तेरे हठ हारिबो।
रूखी रूखी बातनि हूँ सरसै सनेह सुठि,
हिये तें टरे न ये अनखि कर टारिबो।।''

प्रिय की याचना पर प्रेमिका अनमनी हो जाती है। उसका यह अनमनापन ही प्रेमी के मन को मनाता है। प्रिया की झिड़की करोड़ों पुकार से मिलने वाले आदर का निरादर करती है। प्रिया के हठ के आगे हारना प्रेमी के लिए जीवन का सबसे बड़ा लाभ है। प्रिया की रूखी बातों से स्नेह टपकता है और प्रिया का (प्रेमी के बढ़े हुए) हाथों को झुंझलाकर हटा देना– यह तो कभी ह्रदय से हटता ही नहीं।

''कहे देत चित चीकनो नई रुखाई नैन।'' – बिहारी

बिहारी के उक्त 'विरोध' से तुलना करने पर आनन्दघन के उपर्युक्त चित्र का मूल्य समझ में आता है।

प्रिया का झुंझलाकर प्रेमी के बढ़ते हुए हाथों के हटा देने के बांकपन का आस्वादन करना प्रगाढ़ राग में लिप्त प्रेमी का ही कार्य हो सकता है।

उधर प्रिया के अपार रूप में डूबता हुआ मन कोई अवलम्ब नहीं पाता, नहीं पाता, डूबता ही जाता है–

''पानिप अनूप रूप कों निहारि मन,
गयौ हो बिहार करिबें को चाय ढरिकै।
पर्‍यौ जाय रंगनि की तरल तरंगनि मै,
अति ही अपार ताहि कैसें सकै तरिकै।
धीर–तीर सूझत कहूँ न घनआनंद यौं,
बिबस बिचारो थक्यों बीच ही हरि के।
लेस न सम्हार गहि केसनि मगन भयो,
बूडिबे तें बच्यौं को सिवार कों पकरिकै।।''

शैवाल को पकड़कर कहीं डूबने से कोई बचा है? यहाँ शैवाल को परम्परागत उपमान के रूप में ग्रहण करने में असमर्थ रसिक के लिए इस छन्द का चमत्कार बहुत आकर्षक नहीं होगा। किन्तु इस प्रकार के स्थिर चित्र आनन्दघन ने बहुत कम रचे हैं। उनकी विशेषता गति–चित्रों में प्रकट होती है।

वह भोली–भाली प्रिया अत्यन्त सुजान भी है। प्राणों को (प्रेमी के) अत्यन्त तीव्रता के साथ अपनी ओर खींचती है। उसकी हँसी प्रेमी के गले में फंदे को तरह फँस जाती है –

''रूप –गुन–ऐंठी सु अमैठी उर पैठी बैठी,
लाड़नि निरैठी, मति बोलनि हरैं हरी।
जोबन–गहेली अलबेली अति ही नवेली,
हेली ह्वै सुरति बौरी आंचर टरै टरी।
परम सुजान भोरी बातनि छकाए प्रान,
भावति न आन वेइँ हियरा अरै अरी।
फंद सी हंसनि घनआनंद दृगनि गरैं,
मुख सुखकंद मंद उछरि परै परी।''

उसकी भोली बातों में छका हुआ प्रेमी उसके मुख के किंचित् खुलने से ही अपने गले में फंदा पड़ा हुआ महसूस करता है। उसके आंचल के जरा से टलने (खिसकने–टरैं) से ही प्रेमी की सुधबुध बावली होकर उसे छोड़ जाती है।

उधर प्रिया के कटाक्ष मतवाले होकर धूम मचाये हुए हैं –

''रूप मतवारी घनआनंद सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछि घूम करै कौन पै घिरै।''

उसकी भौहों का चांचल्य प्रेमी को अनेक भावों के भेद बता देता है। वे विशाल नेत्र कटाक्ष की कलाओं में पंडित हैं –

''बंक बिसाल रंगीले रसाल छबीले कटाछि–कलानि मैं पंडित।''

आलस के कारण प्रिया के मुख से निकलती हुई अधकही बातें प्रेमी को बेकाबू कर देती हैं–

''अंगराति जंभाति, लसै अंग अनंगहिं अंग दियै झलकैं।
अधरानि मैं आधिय बात धरै लड़कानि की आनि परी छलकै।।''

प्रमी प्रिया को पकड़ लेने की ताक में है। लेकिन उसके दाँव व्यर्थ हो जाते हैं क्योंकि वह प्रिया के रूप का छक कर पान करने के कारण होश में नहीं है। उधर प्रिया है, इतनी

हावभावयुक्त और चंचल कि उसे अपनी छाया भी नहीं छूने देती। प्रिया के अपनी पकड़ में न आने पर असफल प्रेमी दुखी या निराश होने के स्थान पर और भी अधिक मुग्ध होकर अपने हौसले सजाने लगता है।

''दाँव तकै रस रूप छकै विषकै गति पै अति चोपनि धावै।
चौकि चलै, ठठि छैल छलै, सु छबीली छराय लौं छाँह न छ्वावै।
घूंघट ओट चितै घनआनन्द चोट बितै अंगुठाहि दिखावै।
भावती गौ बस ह्वै रसिया हिय हौंसनि सौ सनि आँखि अंजावै।''

इस चित्र के साथ 'केलि की राति अघाने नहीं दिनहूं मैं लला पुनि घात लगाई' जैसे छन्दों की तुलना करने पर इसकी ताजगी स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती है।

प्रगाढ़ रागात्मक लगाव (इन्वाल्वमेंट) के साथ 'ऐन्द्रिय' (सेन्सुअस) चित्र का एक नमूना है। होली के अवसर पर प्रेमी प्रेमिका के कुचों का लक्ष्य करके रंग की पिचकारी तानता है। इधर प्रेमिका गुलाल की मूठ लेकर प्रेमी की ओर उचकी कि उसकी छातियाँ दलक उठीं (उरोजों में कम्पन हुआ)। इस दृश्य को (उरोजों की गति को) देखकर प्रेमी (धनाआनन्द) नशे में झूम उठे, उधर प्रिया कुलांच भरकर अचानक उचक गई। (पिचकारी का निशाना चूक गया)–

''रस–चौचंद चांचरि फाग मची, लखि रीझि बिकानि थकी जु चकी।
समुहाय तहीं हरि भामिनि त्यों पिचकी भरि ताक तकी कुच की।
उत मूठि गुलाल उठें उकसे सु लगें पहिलें छतिया दुचकी।
घनआनन्द घूमनि झूमि रहे गुलचाइल लै अचकां उचकी।।''

इसे स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है कि 'हरि' से आशय केवल प्रेमी (आश्रय) से है।

पद्माकर के होली वाले चित्र इस चित्र के सामने फीके पड़ जाते हैं। इसमें प्रिया की गति पर तो ध्यान है ही, उसके एक अंग की गति पर प्रेमी की केन्द्रित दृष्टि और उसके परिणामस्वरूप उसका नशे में झूमकर रह जाना, घनआनन्द की प्रगाढ़ रागात्मकता का प्रमाण हैं।

एक दूसरा रति–चित्र है, जिसमें मन और शरीर की ललक, उनकी अनेक चंचल गतियाँ और अनुभावों का मूर्त–विधान किया गया है–

''केलि की कला निधान सुन्दर सुजान महा,
आनन समान छबि–छाँह पै छिपैये सौनि।
माधुरी–मुदित मुख–उदित सुसील भाल,
चंचल बिसाल नैन लाज–भीजिये चितौनि।
पिय अंग संग घनआनंद उमंग हिय,
सुरति तरंग रस–बिबस उर–मिलौनि।

झूलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम,
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि।''

इस प्रकार की अपूर्व तृप्ति के साथ ही अतृप्ति की असीमता आनन्दघन के रागालिप्त मन की कथा कहती है। वे 'कथा' नहीं कह रहे हैं जो किसी और नायक–नायिका के जीवन की घटनाओं या प्रेमानुभवो पर आधारित है, बल्कि उनके सामने अपने ही प्रगाढ़ रसानुभाव के दृश्य चित्र हैं, जो विरह में और भी स्पष्ट होकर वियोगी के ह्रदय का मंथन करते हैं।

सुरतांत का एक चित्र पूर्ण तृप्ति के बाद भी प्रेमी के मन की अतृप्ति की झलक देता है। प्रिया अपने बिखरे वस्त्राभूषणों और शिथिल तृप्त अंगों को सम्हालंकर नींद में पड़ी हुई है। चित्र की प्रस्तुति इस प्रकार की है कि दर्शक प्रेमी की अतृप्ति झलक जाती है–

''मद उनमाद स्वाद मदन के मतवारे,
केलि कै अवारि लौ सवांरि सुख सोए हैं।
भुजनि उसीसो धारि अंतर निवारि, जानु,–
जंघनि सुधारि तन मन ज्यों समोए हैं।
सुपने सुरति पागैं महा चोप अनुरागैं,
सोए हूँ सुजान जागै ऐसे भाव–भोए हैं।
छूटे बार टूटे हार आनन अपार सोभा
भरे रस–सार घनआनंद अहो ए हैं।।''

ऐसी तृप्ति अतृप्तिदायिनी प्रिया का वियोग ही इतना गम्भीर हो सकता है।

सुजान के प्रति आनन्दघन का असाधारण प्रेम इनके भक्त हो जाने के बाद भी तत्कालीन जनमानस में गूँजता रहा, जिसका प्रमाण कुछ ईष्यालु लोगों द्वारा रचित भड़ौवा के छन्दों में मिल जाता है।[9] डॉ. इनमें से एक छन्द में आनंदधन के लिए कहा गया है कि–

''हुरकिनी सुजान तुरकीनी को सेवक है
तजि राम नाम वाको पूजे कामधाम है।''

एक दूसरे छन्द में उन्हें 'पाप को भवन करे अगम गमन' कहने के साथ एक अन्य छन्द में उन्हीं की शैली में उनकी ओर से सुजान के इजारबन्द की जूँ बनने की अभिलाषा का वर्णन किया गया है–

''कबहूंक खुजावत में छुवती तिहिं आनंद कों तब हौं भरतौ।
तब रेंगतो कोहुक अंगन पै निज देह तिही रस सों भरतौ।
कहूं चौंकि कै मागिन जो गहती तब हौं उन हाथन सों भरतौ।
वह ईस कहूं घनआनंद को जु सुजान–हजार की जूँ करतौ।।''

इन छन्दों के साथ एक टिप्पणी भी मिलती है जिसमें लिखा है कि 'कायथ आनन्दघन महा हरामजादो हो। सु ब्रज की कटा में आयो। परन्तु अपजस वाको थिर है।'

इस टिप्पणी से और इन छन्दों से, जो किसी तथाकथित सदाचारी भक्त द्वारा कहे गए लगते हैं, इतना सिद्ध हो जाता है कि आनन्दघन का सुजान के प्रति प्रगाढ़ और असाधारण प्रेम उसी समय लोकविख्यात हो गया था। उनके आचरण को पापपूर्ण कहने और उनके प्रेम की भड़ैती करने करने वालों के मन में आनंदधन के प्रति चाहे जितनी घृणा रही हो, इतना स्पष्ट है कि कवि के इस प्रगाढ़ व्यक्तिगत लगाव के कारण कविता का बड़ा उपकार हुआ है। प्रिय के प्रति अडिंग एकनिष्ठता के कारण उनको लम्पट भी नहीं कहा जा सकता। आनन्दघन को केवल प्रेम की पीर का कवि न मानकर उनके छन्दों में अभिव्यक्ति होने वाले सम्पूर्ण प्रणय–दृश्य को एक साथ देखने पर सहज ही कहा जा सकता है कि प्रणयकावय की दृष्टि से हिंदी साहित्य में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है।

विरहानुभूति की विकासात्मक स्थितियाँ

सौन्दर्य, आसक्ति, पूर्वराग और मिलन के चित्रों में आनन्दघन के प्रेमी ह्रदय की जो प्रगाढ़ रागलिप्त विशेषता प्रकट हुई है वही वस्तुतः उनकी प्रेम–पीर को इतनी तीव्रता देने का कारण है। इस बात का संकेत पहले ही वियोग के सम्बन्ध में विचार करते हुए किया जा चुका है। यहाँ मिलन के बाद क्रमशः आने वाले वियोग प्रसंगों में विकासात्मक स्थितियां का निदर्शन कराना ही अभिष्ट है।

प्रवासी प्रिय और बीच की दूरी इतनी बड़ी है कि वहाँ तक बातें पहुँचाने या वहाँ की बाते सुनने की भी सम्भावना नहीं है।

"बात के देस तें दूर परे, नियरे सियरे हियरे दुख दाहे।"

इतनी दूर पर बसे प्रिय के पास सन्देश भेजना वैसे भी सम्भव नहीं है। इधर सन्देश भेजने का प्रयत्न भी किया जाय तो बाधाएँ अनेक हैं–

"कहौं जौं संदेशो ताको बड़ोई, अंदेसो आहि,
न्हानै मन बारे की कहैऽब को सुनै सु कौन।
निधरक जान अलबेले निखरक ओर
दुखिया कहै ब कहा तजाँ को उचित हौन।
परदुख–दल के दलन कौ प्रभंजन हो,
ढरकौंहे देखि के बिबस बकि परी मौन।
इत की भसम दसा लै दिखाय सकत जू,
ललन सुबास सौ मिलाय हूँ सकत पौन।"

पवन की आर्द्रता (ढरकोंहे स्वभाव) को देखकर वियोगी को इतना कहने का साहस होता है कि वह (पवन) चाहे तो यहाँ की भस्म (भसम दसा) को उड़ाकर प्रिय के सामने करे दे, उसे दिखा दे और प्रिय के अंगो से निकली सुगन्ध से उसे मिला दे।

पवन से ही एक दूसरे छन्द में प्रार्थना की गई है कि वह प्रिय के पाँवों की धूल ला दे जिसे वियोगी अपनी आँखों में भरकर उनके ताप को शान्त कर लेगा–

''विरह–विथा की मूरि आँखिन में राखों पूरि
धूरि तिन पायन की हा हा, नैकु आनि दै।''

ऐसे ही दूसरों के कार्य के लिए ही देह धारण करने वाले बादल से प्रार्थना की गई है कि कभी वह वियोगी के आँसुओं को लेकर उस विश्वासघाती सुजान के आँगन में बरसा दे–

''परकाजहिं देह को धारै फिरो परजन्य जथारथ ह्वै दरसो।
निधि–नीर सुधा के समान करौ सबही विधि सज्जनता सरसौ।
घनआनन्द जीवनदायक हौं कछू मेरियो पीर हिये परसौ।
कबहू वा बिसासी सुजान के आँगन मो अंसुवानि को लै बरसौ।''

पवन और मेघ की अतिशय उदारता और परोपकारी स्वभाव के कारण उनसे (सीधे सन्देश तो नहीं भेजा गया है पर) निवेदन किया गया है कि प्रिय के पाँवों की धूल या उनके शरीर की गन्ध का एक झोंक ही ला दें और वियोगी दशा को सांकेतिक रूप में प्रिय तक पहुँचा दें। इन छन्दों में सन्देश भेजने की अपेक्षा प्रिय के साहचर्य वाली धूल या गन्ध की कामना अधिक प्रबल है।

पत्र लिखने की सम्भावना और भी कम है। एक तो 'मन से लेकर मुख तक' बड़ा फेर (अन्तर है) है। मन की बात मुख से कहीं जाय तो वह इतनी हल्की हो जाती है कि 'बखाने ते जाय परे दिन राति को अन्तर'। किसी तरह पत्र लिखने की बात सोची जाय तो वहाँ भी बाधा है। नेत्रों का प्रवाह कभी रुकता ही नहीं, न दृष्टि आँसुओं के पार देख पाती है। पत्र लिखा कैसे जाय?

''घनआनंद जान अनोखी दसा, न लखों दई कैसे लिखी पतियाँ।
नित सावन दीठि सु बैठक में टपके बरुनी तिहि ओलतियाँ।''

पत्र लिखने का प्रबन्ध हो भी जाय तो मन में जो बातें हैं, उनका बाहर आना सम्भव नहीं है–

''मन तें मुख लौं नित फेर बड़ो कित व्यौरि सकौं हित की बतिया।
घनआनंद जीवन प्रान लखौ सु लिखी केहि भाँति परै परिया।''

पत्र लिखना सम्भव नहीं है। उधर वियोगी को लगता है कि प्रिय के सामने तो अपना ह्रदय–रूपी पत्र ही खोलकर रख दिया था, जिसे उसने बिना बाँचे टुकड़े–टुकडे करके डाल दिया–

"पूरन प्रेम को मंत्र महा पन जा मधि सोधि सुधारि कै लेख्यौ।
ताही के चारु चरित्र विचित्रनि यौं पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ।
ऐसो हियो हित पत्र पवित्र जु आन कथा न कहूँ अबरेख्यौ।
सो घनआनंद जान अजान लों टूक कियौ पर बांचि न देख्यौ।"

अनजान में हदय–पत्र नहीं फाड़ा गया है। जानबूझ कर अनजान बनते हुए निठुर प्रिय ने ऐसा कठोर कर्म किया है। उसके पास पत्र भेजने का क्या लाभ? अतः सन्देश, पत्र, सब व्यर्थ।

फिर भी वियोगी की आशा तो ऐसी है कि मरने पर भी नहीं छूटेगी इसी अमित आशा के कारण वह ऐसा भी सोचता है कि प्रिय चाहे जितना निर्दयी हो, मेरी दशा देखकर उसके मन में दया हो ही जाएगी।

इसी आशावादिता का परिणाम है कि वियोगी को (न जाने क्यों) ऐसा लगा कि प्रिय ने आने की आशा बंधा दी है। (अन्तःकरण ही प्रमाण है) आशा की झिलमिलाहट में तड़प की तीव्रता बढ़ गई हैं।

"जब में तूम आवन–आस दई तब तें तरफीं कब आय हौ जू।
मन–आतुरता मन ही मैं लखौं मनभावन, जान सुभाय हौ जू।
विधि के दिन लौं छिन बाढ़ि परे यह जानि वियोग बिताय हौ जू।
सरसौ घनआनंद वा रस कौं जु रसा रस सों बरसाय हौ जू।"

इस आमूर्त आशा ने मूर्त रूप से लिया है, यह जानकर कि प्रिय ने लौटने की कोई अवधि निश्चित कर दी है। पहले तो कोई बात न पहुँचती थी, न आती थी। अब अवधि की सूचना आ गई है। इस सूचना से दर्शन की भूखी–प्यासी आँखों में लाखों अभिलाषाएँ भरने लगी हैं–

"अभिलाखनि लाखनि भाँति बरुनीन रुमांच ह्वै कांपति हैं।
घनआनंद जान सुधाधर–मूरति चाहनि अंक में चांपति हैं।
टग लाय रहीं पल पांवड़ें कै सु चकोर की चोपहि झांपति हैं।
जब तें तुम आवनि–औधि बदी तब तें आँखियाँ मग मापति हैं।।

आँखों का अपना अलग व्यक्तित्व है, वे एक अंग मात्र नहीं रह गई हैं। अवधि निश्चित हो गई। आँखें रास्ता नापते–नापते पथरा गई। वियोगी को लगने लगा है कि वयस (आयु) सेना के लिए आगे जाने वाले सामान की तरह चलती जा रही है। अन्त में शरीर भी जाएगा। अब भी अवसर है, अगर प्रिय आ जाता–

"मग हेरत दीठि हिराय गई जबतें तुम आवन–औधि बदी।
बरसो कित हू घनआनंद प्यारे पै बाढ़ति है इत सोच–नदी।
हियरा अति औटि उदेग की आंचनि च्वावत आँसुनि मैन मदी।

कब आयहौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी।''

अवधि की सूचना से आशा विश्वास में बदल गई है। वह विश्वास कभी–कभी सार्थक होता हुआ दिखता है। बादल आते हैं। बादलों के रूप में सघन आनन्ददायक प्रिय का स्वरूप उभर आता है। अभिलाषाओं के लाखों नये अंकुर फूटने लगते हैं।

''बरसें तरसें सरसें अरसें न, कहूं दरसें इहि छाक छई।
निरखें परखें करखें हरखें उपजीं अभिलाखनि लाख जई।
घनआनन्द ही उनए इनि मैं बहुभांतिन ये उन रंग रई।
श्रसमूरति स्यामहिं देखत ही सजनी आँखियाँ रसरासि भई।''

प्रिय के रूप की प्रतीति कराते, उसके आने के विश्वास को दृढ़ करके बादल आ गए हैं। आज पूरी प्रकृति कुछ और ही रंग की (अनोखें, नये आकर्षण से युक्त) लग रही है–

''आयौ महारस पुंज भर्‌यौ घनआनंद रूप–सिंगार के भौरै।
सींचत है हिय देस–सुदेस अपूरब आँखिनि ठानत ठौरै।
मोहन बाँसुरिया सौ बजै मधुरे गरजें धुनि मैं मति बौरै।
आज की मोरन की सजनी चित दै सुनि लै कछु बोलनि औंरै।।

इन चित्रों को पूर्वराग की समाप्ति पर मिलन–प्रसंग के सन्दर्भ में भी रखा जा सकता है, किन्तु तब इनकी सूक्ष्म व्यंजकता समाप्त हो जाती है।

अगणित अभिलाषाओं से भरा वियोगी हृदय प्रियागम की प्रतीक्षा कर रहा है। अवधि की सीमा आ गई है। ऐसे में ये घन और उनको उमड़ता देखकर बोलते हुए मयूरों की बोली कुछ और तरह की लगे, इसका काव्यत्व अलग है।

विरहिणी के स्वप्न का, जिसमें पल भर के लिए प्रिय का साहचर्य प्राप्त होने की स्थिति आते–आते रह जाती है, वर्णन सूर जैसे रससिद्ध कवियों ने बड़ करुणाजनक मार्मिकता के साथ किया है।

''मनों गोपाल आए मेरे गृह हँसि कर भुजा गही।
कहा कहौं बैरिन भई निंदिया निमिष न और रही।
ज्यौं चकई प्रतिबिम्ब देखिकै आनन्दी प्रिय जानि।
सूर पवन मिस निठुर बिधाता चपल किया जल आनि।''
–सूरसागर

आनन्दघन में यह स्वप्नचित्र अभिलाषा की आवेगपूर्ण तीव्रता के नाते बिना प्रकृतिक बिम्ब–विधान के ही अत्यन्त मर्मस्पर्शी हो गया है।

''सोवत भाग जगे सजनी दिन कोटिक या रजनी पर वारे।
नेह–निधान सुजान सजीवन औचक ही उर–बीच पधारे।
सौतिन तें पिय पाय इकौसें भरे भुज सोच सकोच निवारे।
बैरिनि दीठि जरौ घनआनंद यौं जिय लै पल पाट उधारे।''[10]

स्वप्न और यथार्थ की झिलमिलाहट 'उर–बीच' पधारने में अत्यन्त कलात्मक रूप में प्रस्तुत हुई है।

मौन की पुकार और अकथ गम्भीर वियोग–व्यथा ही आनन्दघन की अपनी विशेषता है। उननी व्यथा कही जा सकने वाली नहीं है। मौन की पुकार ही अगर प्रवासी प्रिय तक पहुँचे तो पहुँचे, कोई दूसरा उपाय नहीं है उस वेदना की अभिव्यक्ति का, क्यौंकि 'मन से मुख तक इतना फेर' है कि कह देने पर वास्तविक वेदना में और उसके कथन में दिन–रात का अन्तर पड़ जाएगा। यही कारण है कि विरह–वर्णन की रूढ़ियों को छोड़ना ही उन्होंने उचित समझा है। उद्वेग, उन्माद, व्याधि, जड़ता और ऊहात्मक ताप–वर्णन या कृशता–वर्णन (जैसा बिहारी आदि में मिलता है) आनन्दघन में नहीं है। इसके आधार पर ही आनन्दघन को रीति के प्रभाव से बिल्कुल अलग माना जाता है। किन्तु संयोग की तरह वियोग–वर्णन भी कहीं–न–कहीं से परम्परा और परिवेश से प्रभावित अवश्य हो जाता है।

जिस प्रकार संयोग–वर्णन में प्रेम की प्रगाढ़ता और अनन्यता के बावजूद कुछ बातें ऐसी हैं जो आनन्दघन पर परम्परा और परिवेश का प्रभाव प्रमाणित करती हैं, उसी प्रकार वियोग–वर्णन में भी शास्त्रीय वियोग दशाओं तथा ऊहा की सीमा का स्पर्श इनके छन्दों में मिलता है यद्यपि वह औरों की तरह कृत्रिम नहीं लगता।

प्रेम के सम्बन्ध में आनन्दघन की अवधारणा

रीति–स्वच्छन्द कवियों के जिस वर्ग में आचार्यों ने आनन्दघन को रखा है उस वर्ग के कवियों के प्रेम की विशेषताएँ बताते हुए प्रायः स्वीकार किया गया है कि ''इनका (स्वच्छन्द धारा वाले कवियों का) प्रेम मुख्यतः अशरीरी और मानसिक है। वैयक्तिकता के प्रभाव के कारण इनके प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण को रोमैण्टिक प्रेम की संज्ञा दी जा सकती है।''[20]

रूप–वर्णन और संयोग के सन्दर्भ में यह स्पष्ट हो चुका है कि आनन्दघन का प्रेम मानसिक तो है किन्तु अशरीरी उसे नहीं कहा जा सकता। पहले रूप और यौवन की ओर आसक्त प्रेमी प्रिय के शरीर और एक–एक अंग की गति पर मुग्ध हुआ। फिर संयोग का अवसर पाकर वह उस सौन्दर्य का भोग शुद्ध शरीर के स्तर पर करता रहा। जब उस प्रिय की शारीरिक रूप में प्राप्ति सम्भव नहीं रह गई, (मन में तो वह निरन्तर विद्यमान है ही) तो प्रेमी का कष्ट बढ़ गया। मूलतः वह कष्ट शरीर का है, एक–एक अंग का है जिन अंगों ने प्रिय का साहचर्य सुख भोगा है। इस बात को अभिलाषा वाले चित्रों में देखा जा सकता हैं–

''मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आंजिहौं।
रति–रसना–सवाद–पांवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलनि सों मांजिहौं।
जान प्यारे प्रान अंग–अंग रुचि रंगनि मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग दुख भांजिहौं।
कब घनआनंद ढरौंही बानि देखें सुधा,
हेत मन–घट–दरकनि सुठि रांजिहों।''

एक–एक अंग की ललक शरीर के स्तर पर ही अभिलाषा की प्रगाढ़ता सूचित करती है। आनन्दघन का प्रेम केवल मानसिक प्रेम कभी नहीं रहा है। उसकी प्रगाढ़ता सदैव मानसिक रूप से प्राप्त प्रिय को शारीरिक रूप में प्राप्त करने को लालायित रहती है। ऑखों को रूप–वाहक कहा गया है। सूरदास की गोपियॉ विरह –बेलि बोने के लिए नेत्रों को कोसती हैं–

''इन नैनो बिरह की बेलि बई.।
सींचत नैन नीर के सजनी मूर पताल गई।।''–

सूरसागर आनन्दघन के विरह –व्याकुल प्रेमी को मन से ही शिकायत है कि प्रिया को उसने वहीं बिठा लिया है। नेत्रों के सामने (सशरीर) प्रिय को कभी उपस्थित नहीं करता–

''नैन कहै सुनि रे मन ,कान दे क्यों इतने गुन मेटि दयौ है।
सुन्दर प्यारे सुजान को मन्दिर बाबरे तू हमही ते भयो है।
लोभी तिन्हें तनको न दिखावत ऐसो महामद छाकि गयो है।
कीजियै जू घनआनन्द आय कै पाय परौं यह न्याय नयौ हैं।''

ऑखों का और मन का झगड़ा ही यही है कि प्रिय के रूप से परिचय कराया ऑखों ने और अब मन ने अपने को उस रूप का मन्दिर बना लिया है (प्रिय मन –मन्दिर में है, किन्तु उसे बाहर देखने की ललक ऑखें की है) जिस माध्यम (नेत्रों) से मन को यह अवसर मिला, उन्ही नेत्रों को मन से वंचित कर दिया है।प्रिय का प्रत्यक्ष दर्शन ही अभीष्ट है।

आनन्दघन का प्रेम शरीर के स्तर से ही आरम्भ होता है और विरह में असाधारण तीव्रता के कारण भी (सम्पूर्णता के साथ प्राप्त) शरीर के अनुभव ही हैं। विशेषता यह हैं कि विरह –दुःख की तीव्रता का जो प्रकाशन उनके छन्दों में हुआ है वह शारीरिक दुःख –ताप की ऊहात्मक रूढ़ियों से आगे बढ़कर दुःख की सघनता के कारण मानसिक विकलता की वृद्धि की ही व्यंजना करता है।विरही के दुःख का जो रूप छन्दों में अभिव्यक्त हुआ है वह शारीरिक उछलकूद या जाड़े की रात में लू चलाने वाले अथवा गुलाबजल की शीशी की धारा को भाप बनाकर ऊपर से ही उड़ा देने वाला नहीं है। वह राग की प्रगाढ़ता के कारण प्रिय के अभाव में मिलने वाले कष्ट को अनिर्वचनीय बना देता है। प्रिय का रूप असाधारण है। उसके प्रति आसक्ति उतनी ही तीव्र है। उससे मिलने वाला सुख वैसा ही अद्भुत आनन्द देने वाला है।

इसीलिए उसके न होने का दुःख भी अकथ और अपरिसीम है। आनन्दघन के वियोग की मार्मिक अभिव्यक्ति का रहस्य उनके पूरे प्रेम –प्रसंग की एक साथ देखने पर ही खुलता है।

शारीरिक और लौकिक प्रेम किस तरह अलौकिक ऊँचाई प्राप्त करता है, यह आनन्दघन के छन्दों में व्यक्त हुआ है। लौकिक दृष्टि से आदर्श माने जाने वाले प्रेमी –मीन और पतंग – उस 'प्रीति –रीति' को नहीं समझ सकते जो 'इस' प्रेमी के लिए सहज ही ग्राह्य है। वे दोनों (मीन –पतंग) तो उस दुःख से छूटने के लिए मृत्यु का वरण कर लेते है। यहॉ प्रेमी मृत्यु को पीछे छोड़ देता है। मृत्यु के बाद भी प्रिय –दर्शन की आशा रूपी रस्सी प्रेमी की उसॉस के गले में पडी़ रह जाती है। वियोगी की वेदना को देखकर मृत्यु ही मर जाती है। वह अपनी उस अकथ व्यथा को झेलता रहता है।

आनन्दघन के प्रेम को प्रायः अनुभयानिष्ठ[21] या विषम प्रेम[22] कहा गया है। विरह –वर्णन के छन्दों में प्रेमी की दुर्दशा और प्रिय की निठुराई के सम्बन्ध में आनन्दघन ने बहुत कुछ कहा है। उपालम्भ की अनेक बातें बहुत से छन्दों में मिलती है, जिनके उनके विषम प्रेम का पता चलता है।इस विषमता से विद्धानों ने यहॉ तक निष्कर्ष निकाल लिए है कि '' उनका निजी जीवन ही विरोधों और विषमताओं का जीवन रहा, सुख से उन्हें जैसे भेंट ही न हुई थी, कम –से –कम अन्तर्साक्ष्य से तो यही प्रमाणित होता है। उन्हें सुजान की चाह थी और सुजान उन्हें न मिली ,सुजान से उन्होनें सर्वात्म भाव से प्रेम किया पर उसने इनका साथ न दिया,यों कहिए कि इन्हें ठुकरा दिया''।[23]

सौन्दर्य –वर्णन और संयोग के सन्दर्भ में यह देखा जा चुका है कि आनन्दघन का अनुभव उपर्युक्त कथन से भिन्न है। उन्हें प्रिया और उसके साहचर्य –सुख की उपलब्धि असाधारण रूप में हो चुकी थी। उसी तृप्ति के अभाव में उनकी वियोग –व्यथा इतनी असाधारण है । अतः इस प्रकार का निर्णय असंगत है कि आनन्दघन को कभी सुख से भेंट नहीं हुई। सुख से भेंट न होने पर उसके अभाव में इतनी गहराई कभी नहीं आ सकती थी। संयोग के चित्र तो उनके संयोग –सुख के प्रमाण है ही , वियोग के चित्र भी प्रकारान्तर से उनके असाधारण संयोग –सुख के प्रमाण है । वियोग –वर्णन में उनके प्रेम की विषमता उभरकर सामने आती है । परिस्थितियों का दबाव रहा हो या बाद में सुजान का प्रेम इनके प्रति कम हो गया हो, जो भी कारण हो, उन्हें वियोग –दुःख झेलना पड़ा। उसी दुःख के कारण इनकी कविता इतनी मार्मिक हो सकी है। वियोग में ही प्रेमी की (और प्रेम की भी) परीक्षा होती है। आनन्दघन के मन का प्रेमी इस परीक्षा में पूर्णतः खरा उतरता है। वह इस क्षेत्र के अन्य आदर्शो (मीनता और शलभता) को बहुत पीछे छोड़ देता है।

प्रेम की अकथ पीड़ा की मधुरता सब लोग नहीं समझ सकते।

''चाह मीठी पीर जिन्हें उठति आनंदघन,
तेइ ऑखें साखें और पाखें कहा जानहीं।''

सभी आँखे आँखों के आकार –प्रकार की तो होती है, उनमें वह प्रेम–दृष्टि नहीं होती,जो आनन्दघन की विशेषता है। ऐसे स्नेही संसार में मिलते ही कहॉ है?–

''इकतौ जग–मांझ सनेही कहाँ, पै कहूँ जौ मिलाप की बास खिलै।
तिही देखि सकै न बड़ो विधि कूर, वियोग समाजहि साजि चलै।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ, न मिलौ तो कहौ मन काहि मिलै।
अमिले रहिबो लै मिले तें कहा, यहि पीर मिलाप मैं धीर गिलै।''

आनन्दघन यहॉ जिस प्रिय की बात करते है, वह निठुर नहीं हो सकता।फ़ारसी के शायरों के माशूक की तरह आशिक को तड़पाना उसकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती । कवि स्पष्ट कहता है कि संसार में प्रेमियों को स्नेही नहीं मिलते (सुन्दर रूप वाले तो मिल सकते हैं।) तुम मिल गए हो (स्पष्ट संकेत है कि प्रिय सुन्दर तो है ही, स्नेही भी है) अगर तुम भी मिलाप (संयोग) में रूचि न लो, तो मेरा (प्रेमी का) मन क्या करे ?

आनन्दघन अपने प्रिय को बार –बार जान, सुजान, जानराय , ढरकोंही बानि वाले (द्रवणशील चित्त वाले) कहते हैं जिसका स्पष्ट संकेत है कि प्रिय की निठुराई परिस्थितिवश है, स्वभावगत नहीं है। प्रेमी को उसकी कोमलता का अनुभव भी प्राप्त हो चुका है । अब वियोग का दुःख तब मिटे जब प्रिय आरोपित कठोरता का त्याग करके पुनः अपने स्वभाव में आ जाय।

''बरसौ घनआनंद जीवन कों सरसी सुधि चातक छीनन की।
मृद्रु तो चित के पन पै इत के निधि हो हित के रूचि मीनन की।''
और–
''सब ही विधि जान, करौ सुखदान, जियावत प्रान कृपा –तन हौ।''
ऐसा प्रिय स्वभाव का निठुर कैसे कहा जा सकता है।

वियोग के दुसह दुःख को झेलते हुए भी उसके 'कारण रूप' प्रिय को कठोर और निठुर स्वभाव के स्थान पर कोमल चित्त मानने वाली आशावादिता आनन्दघन के प्रेम में ही हो सकती है। यहीं पर उस प्रेम –दृष्टि की विशेषता प्रकट होती है जो मीन और पतंग के पास नहीं है। वे दुःख को देखकर प्राण त्याग देते हैं। यहाँ प्रेमी दुःख की किसी सीमा को इतनी बड़ी नहीं मानता कि उसकी आशा समाप्त हो जाय ।

शारीरिक स्तर से आरम्भ होकर इतनी सूक्ष्म मानसिक दशा तक पहुॅचने वाला प्रेम निश्चय ही लौकिक प्रेम की सीमा से ऊपर उठ जाता है। पहले संकेत किया जा चुका है कि आनन्दघन सूफ़ियों की तरह शारीरिक प्रेम के विकास की चरम परिणति के रूप में ही ईश्वरीय प्रेम को स्वीकार करते है। इस स्थल पर यह बताना उचित है कि आनन्दघन की परिकल्पना में शारीरिक और ईश्वरीय प्रेम का सम्बन्ध मौलिक है। एक छन्द में उन्होनें अपने लौकिक प्रेम (प्रिय के प्रति प्रेमी के भाव) का सम्बन्ध राधा –कृष्ण के शाश्वत प्रेम से इस प्रकार स्थापित किया है –

''प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै, बिचार

बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एकरस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि राधा ,जिन्हैं देखें सरसायौ हैं।
ताकी कोऊ तरल तरंग संग छूट्यौ कन
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनंद सुजान लागि हेत होत,
ऐसे मथि मन पै सरूप ठहरायौ है।''

42

विचार (ज्ञान–विवेक) बेचारा जिस प्रेम –पयोधि को देखकर किनारे से ही लौट आता है, वह सागर राधा और कृष्ण को देखकर पुलकित होता है जो एकरस होकर उस सागर का अवगाहन करते हैं। उसी प्रेम–पयोनिधि की एक बूंद छिटक कर संसार को भर देती है और उफन पड़ती है। वही (भाव) आनंदघन और सुजान के लिए हेत (प्रेम–लगाव) है, ऐसा स्वरूप (अपने प्रेम का) मन को मथकर (कवि ने) स्थिर किया है।

इस छन्द में दो बातें बहुत स्पष्ट हैं। पहली यह है कि राधा और कृष्ण का प्रेम अलौकिक और दिव्य है। वे जिस सागर में अवगाहन करते हैं उसकी बूँद मात्र सारे संसार के लिए पर्याप्त है । वही सुजान और आनन्दघन के लिए हेत (सांसारिक प्रेम)के रूप में व्यक्त होता है । दूसरी यह है कि भक्ति के लिए आनन्दघन को इस बात की आवश्यकता नहीं हैकि वे अपने मन के सांसारिक वासना –भाव का राधा और कृष्ण के नाम पर खुला वर्णन करें ।रीतिकाल के अधिकांश कवियों की भक्ति पर यही कलंक है कि राधा और कृष्ण उनके लिए केवल नर और नारी के प्रतीक हैं । उनके लिए इन कवियों के मन में कोई भक्ति नहीं है । आनन्दघन के साथ यह बात बिल्कुल दूसरे रूप में लागू होती है ।

विनम्रतापूर्वक निवेदन करना आवश्यक लगता है कि कुछ विद्वानों ने घनआनन्द के लौकिक और ईश्वरीय प्रेम को अलग करके नहीं देखा हैं जिसके परिणामस्वरूप शारीरिक आसक्ति को व्यक्त करने वाले प्रिया सुजान सम्बन्धी छन्दों के ऐन्द्रिय रूप– वर्णन को राधा के साथ जोड़ दिया गया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द को लिया जा सकता है –

''चातुर ह्वै रस –आतुर होहु न बात सयान की जात क्यों चूके।
ऐसी अठानिनि ठानत हौ कित धीर धरौ न परौ जिन ढूके।
देखि जियौ न छियौ घनआनन्द कोंवरे अंग सुजान वधू के।
चोली –चुनावट चीन्हें चुभै चपि होत उजागर दाग उतू के ।''

इस छन्द को डॉ. मनोहरलाल गौड़ ने अपने शोधप्रबन्ध में साम्प्रदायिक भक्ति के अन्तर्गत राधा के लिए मानकर उद्धृत किया है । 24

यदि इस कथन को राधा के लिए स्वीकार किया जाय तो आनन्दघन और रीतिकाल के अन्य कवियों में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा । एक अन्य बात यह कहीं जा सकती है कि

साम्प्रदायिक मधुरोपासन में राधा–कुष्ण के लिए इससे भी अधिक खुले श्रृंगार का वर्णन है और आनन्दघन की इस प्रकार की रचनाएँ भी है। तब इसमें क्या आपत्ति है? आपत्ति यह है कि सुजान के विषय में कहे गए छन्दों में आनन्दधन की ऐन्द्रिय दृष्टि बहुत साफ उभरती है अतः उनकी दोनों प्रकार की रचनाएँ (श्रृंगार और भक्ति की) बिल्कुल अलग–अलग हैं। सम्प्रदाय वाली रचनाओं में कवि ने राधा का सीधे नाम लिया है। भक्त हो जाने के बाद आनन्दघन कभी राधा की चोली की सिलाई के दाग उनके उरोजों पर देखने का इस रूप में वर्णन नहीं करते। इस सम्बन्ध में निवेदन है कि सुजान हित को आनन्दघन के 'श्रृंगार' के अन्तर्गत ही रखा जाय तो उनके साथ न्याय किया जा सकता है।

आनन्दघन का प्रेम पूरी तरह लौकिक और शारीरिक है। शारीरिक होते हुए भी उनका प्रेम पूर्ण गम्भीर है। वियोग में प्रिय की निष्ठुरता के बावजूद पूर्णतः एकनिष्ठ है और शारीरिक स्तर पर पूर्णतः ऐन्द्रिय (सेनसुअस) होते हुए भी गहरी मानसिकता लिए हुए है। यहीं आनन्दघन के प्रेम की विशेषता है जो उनके वर्ग के कवियों से भी उन्हें अलग कर देती है। इस स्थल पर दो कवियों से आनन्दघन की तुलना की जा सकती है। छायावाद के अन्तर्गत प्रिय–विरह में मिलन का सुख प्राप्त करने वाली महादेवी वर्मा का प्रेम ऐन्द्रियता का स्पर्श कहीं नहीं करता इसीलिए उसमें प्रखर व्यक्तिनिष्ठता का अभाव है। वह श्रृंगार काव्य के रूप में स्वीकार्य नहीं हो सकता, हालांकि उसमें विरह की ही चर्चा है। दूसरी ओर आनन्दघन के परवर्ती किन्तु उन्हीं के वर्ग में आने वाले कवि बोधा हैं, जिनके प्रेम में ऐन्द्रियता (सेन्सुअसनेस) इतनी स्थूल है कि उसका रंग आनन्दघन के प्रगाढ़ राग के समक्ष फीका पड़ जाता है। बोधा राधा–कृष्ण के संभोग का वर्णन तो करते ही हैं, यह भी कहते हैं कि–

"यों दुरि केलि करै जग में नर धन्य वहै धनि है वह नारी।।"

बोधा में भी इतनी ईमानदारी है कि वे इस प्रकार की बातें भक्ति के आवरण में नहीं करते।

आनन्दघन एक ओर प्रगाढ़ रागात्मकता के कवि हैं, और दूसरी ओर अत्यन्त सूक्ष्म मानसिक दशाओं के गायक। राधा और कृष्ण के जिस प्रेम को आनन्दघन प्रेम–पयोधि के रूप में देखते है। उसका वर्णन वे अलग राधा–कृष्ण की कृपा का उल्लेख करते हुए अपनी याचना प्रस्तुत करते हैं।

यहाँ यही देखना अभीष्ट है कि आनन्दघन का लौकिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम से कहाँ और किस रूप में जुड़ता है। ऊपर यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि उनकी मान्यता के अनुसार ईश्वरीय प्रेम के सागर की एक बूँद ही सांसारिक प्रेम के रूप में अभिव्यक्ति पाती है किन्तु इससे उनके द्वारा गृहीत लौकिक प्रेम (अपने और प्रिया सुजान के सम्बन्ध) में कोई ऐसी बात नहीं आती जिससे वह शुद्ध शाकाहारी (केवल भक्तों के काम का) प्रेम बनकर रह जाय। आनन्दघन ने अपनी भक्ति–भावना को अलग रखने का संयम साध लिया है, इसलिए उनके द्वारा चित्रित शारीरिक प्रेम पूर्ण प्रगाढ़ता और रागदीप्ति के साथ प्रकाशित हो सका है।

"राधा हरि, हरि राधिका, बनि आये संकेत।
दंपति रति–विपरीत–सुख, सहज सुरति हू लेत।।" –बिहारी

इस प्रकार के विपरीत रति के चित्रण में अपनी आकांक्षा को भक्ति के नाम पर राधा और कृष्ण के प्रचलित आवरण में ढकने की आवश्यकता आनन्दघन को नहीं थी। यहीं कारण है कि आनन्दघन की सुजान सम्बन्धी रति और कृष्ण सम्बन्धी भक्ति दोनों अत्यन्त मार्मिक रूप में उनके छन्दों में व्यक्त हुई है, इस विशेषता के साथ कि कोई किसी को प्रभावहीन नहीं करती। आनन्दघन कृष्ण के प्रसंग में उनकी कृपालुता की ही बात पर जोर देते हैं। राधा या गोपियों के साथ जिस छन्दों में कृष्ण का सम्बन्ध संकेतित है, वहाँ भी संभोग के संकेत नहीं हैं। उनके परस्पर उफनते हुए प्रेम की झलक देना ही कवि पर्याप्त समझता है। भक्ति की भावना आनन्दघन की प्रेम–भावना को प्रभावित करती है तो इसी रूप में कि भक्ति की तरह ही आनन्दघन के लौकिक प्रेम में भी तन्मयता, अनन्यता और बिना प्रतिदान के अपने प्रेमपथ पर दृढ रहने की अडिगता आ गई है। इसी बात को इस रूप में भी कहा जा सकता है कि आनन्दघन का प्रगाढ़ और अनन्य प्रेमानुभव कृष्ण के प्रति उनके मन के समर्पण भाव को अन्त में प्रेमाभक्ति में बदलने में सहायक हुआ है।

यही कारण है कि लौकिक प्रेम के अन्य रीतिकालीन गायकों की अपेक्षा आनन्दघन की प्रेमानुभूति अधिक गहरी और सूक्ष्म दिखाई पड़ती है।

आनन्दघन के लिए प्रेमानुभव और काव्यसर्जन की प्रक्रिया दो पृथक–पृथक स्थितियाँ नहीं हैं। उनका प्रेम के रस से लबालब भरकर छलकता हुआ ह्रदय काव्य का प्रवाह निरन्तर बनाए रखता है। इसी स्थिति की सूचना वह यह कहकर देते है कि–

"लोग हैं लागि कवित बनावत मोंहि तो मेरे कवित बनावत।।"

इस प्रेमदृष्टि (या काव्यदृष्टि) को साधारण आँखे नही पहचान सकतीं। यह प्रेम–मार्ग जिस पर ऐसा प्रेमी चल रहा है, बहुत सीधा हैं। कहीं भी इधर उधर देखना इसमें निषिद्ध है, किन्तु जो कपटी है, निःशंक (ईमान वाले) नहीं हैं, वे इस मार्ग पर नहीं चल सकते।

"अति सूधो सनेह को मारग है जहं नेकु सयानप बांक नहीं।
त्हाँ सांचे चलै तजि आपनपौ झझकै कपटी जे निसांक नहीं।

किसी का सर्वस्व समर्पण पाने में सहज ही समर्थ वह प्रिय एकान्त प्रेमी की विकलता को नहीं जान सकता। उसकी एक शर्त है कि अगर वह पल मात्र के लिए अपने को आपसे अलग कर सके तो उसे पता चले कि उसके वियोग में जो तड़प रहे हैं, उनकी वास्तविक स्थिति क्या है?

"मो गति बूझि परे तब ही जब होहु घरीक हू आपतें न्यारे।"

इस दशा का कथन असम्भव है। दिन–रात का अन्तर पड़ जायग, अगर उसका वर्णन किया जाय। इसीलिए आनन्दघन की काव्यप्रिया (वाणी–वधू) का साहचर्य सभी लोग नहीं पा सकते। उसके लिए विशेष रिझवार सुजान होना चाहिए।

"घनआनन्द बूझति अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान–धनी।"
क्योंकि वह ह्रदय–रूपी भवन में मौन का घूँघट डालकर बैठी हैं–
"उर भौन में मौन को घूँघट कै दुरि बैठी विराजति बात बनी।"

मौन के घूँघट को हटा पाना सबके वश की बात तो नहीं है। इसीलिए ब्रजनाथ की चेतावती है कि–

"समुझै कविता घनआनन्द की जिन आंखि नेह की पीर तकी।"

आनन्दघन ने अपने जीवन और अपनी मृत्यु दोनों में इस प्रेम पीर का निर्वाह किया।

मृत्यु की घटना पर दृष्टिपात करने से आनन्दघन की प्रेम–परिकल्पना साकार हो उठती है। उनकी मृत्यु, कहते हैं, अहमदशाह अब्दाली के सैनिकों के हाथों हुई। मथुरा में कत्लेआम करने वालों से आनन्दघन ने कहा कि मेरे शरीर पर तलवार से धीरे–धीरे घाव करते हुए मुझे मारो। ज्यों–ज्यों इनको तलवार के घाव लगते गए त्यों–त्यों ये ब्रज–रज में लोटते रहे। ब्रज–रज के कण–कण में अपने रक्त की एक–एक बूँद मिलाकर उन्होंने प्रेम की पीड़ा रस लेते हुए शरीर त्याग किया।"[26]

प्रिय सुजान से लौकिक प्रेम करते हुए चरम प्रगाढ़ता के साथ तृप्ति का अनुभव करने वाले प्रेमी ने उसके विरह को भी उसी आत्मीयता के साथ भोगा। अन्त में लौकिक प्रेमानुभव कृष्णान्मुख हुआ और कृष्ण की लीलाभूमि ब्रज के रजकणों को अपने रक्त से सोखते हुए, तड़प का स्वाद लेते हुए मरकर आनन्दघन ने अपन प्रेम को उस रूप में प्रमाणित किया, जैसा और कोई न कर सका।